

स्कूल और समाज

जॉन डिवी

लेखक परिचय :

यह लेख जॉन डिवी की सलेक्टेड राइटिंग्स, संपादक-रेजीनाल्ड डी. आरकेम्बल्ट, से लिया गया है।

अनुवादक :

देवयानी

जॉन डिवी (1859-1952) को आधुनिक शिक्षा दर्शन का जनक माना जाता है। यह दौर शिक्षा के क्षेत्र में पुरातन, परंपरावादी, विचारों से मुक्ति का समय था। जॉन डिवी अमेरिका में प्रगतिशील शिक्षा के अगुवा रहे। उनके विचारों ने न सिर्फ अमेरिका बल्कि दुनियाभर के शिक्षा जगत को प्रभावित किया। जॉन डिवी ने समाज में हो रहे व्यापक बदलावों के मद्देनजर शिक्षा की स्थिति और भूमिका को समझते हुए उसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया। वे मानते हैं कि यदि शिक्षा को बदलते समाज की जरूरतों के हिसाब से परिभाषित नहीं किया जाएगा तो शिक्षा समाज से कटी हुई रहेगी।

इस लेख में जॉन डिवी स्कूल और समाज के संबंध में विचार करते हैं। वे कहते हैं कि प्राक्-आधुनिक समाजों (औद्योगिकरण से पूर्व के समाजों) में उत्पादन की प्रक्रिया में समाज और परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी होती थी। बच्चा अपने परिवेश से ही ज्ञान अर्जित करता था। इस प्रक्रिया में निहित अनुशासन और चरित्र निर्माण संबंधी घटकों से परिचित होता था। इस पूरी प्रक्रिया में बच्चा अवलोकन, कौशल, रचनात्मकता और कल्पनाशीलता, तर्कसंगत चिंतन और वास्तविकताओं के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क से अर्जित यथार्थ बोध का निरंतर प्रशिक्षण प्राप्त करता था और यह सीखना बच्चे के लिए कहीं सार्थक और स्थाई होता था लेकिन औद्योगिकरण ने उत्पादन के तरीकों को इतना बदल दिया है कि बच्चों के लिए यह जानना मुश्किल हो गया है कि किसी चीज का उत्पादन कैसे हो रहा है।

अतः वे कहते हैं कि स्कूल को सामुदायिक उत्पादक गतिविधियों से जोड़ना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा के नाम पर बच्चों को उत्पादक गतिविधियों से जोड़ने के प्रचलित विचार का खंडन करते हुए कहते हैं कि इसका उत्पादन में योगदान से कहीं अधिक शैक्षिक महत्त्व है। यह बच्चे के सार्थक सीखने एवं समाज के विकासक्रम को समझने के लिए भी आवश्यक है।

हम स्कूल को नितान्त व्यक्तिगत नजरिए से देखने के अभ्यस्त हैं, जैसे कि वह महज छात्र और अध्यापक के बीच या अध्यापक और अभिभावकों के बीच की कोई चीज हो। इसीलिए स्वाभाविक ही है कि हमारी सर्वाधिक दिलचस्पी भी व्यक्ति विशेष, यानी हमारे परिचय के दायरे में आने वाले बच्चों ने कितनी प्रगति की, जैसे उसके सामान्य शारीरिक विकास, उसकी लिखने, पढ़ने और आकारों को पहचानने की क्षमता के विकास, भूगोल और इतिहास के उसके ज्ञान के विकास, आचरण में सुधार और तत्परता, व्यवस्था और उद्यमिता की आदतों के विकास तक सीमित रहती है, मानो कि यही मानक स्कूल के काम-काज को जांचने का हमारा इकलौता पैमाना हो। और ठीक ऐसा ही है। अब इस नजरिए को और व्यापक किया जाना अपेक्षित है। बेहतरीन और बुद्धिमान माता-पिता अपने बच्चे के लिए जो

अपेक्षा रखते हैं वही समूचे समुदाय की भी अपेक्षा होनी चाहिए। हमारे स्कूलों के लिए इससे कम कोई भी होगा और यदि उसे स्वीकार किया जाता है तो यह लोकतंत्र के लिए घातक होगा। समाज ने अब तक जो भी अर्जित किया है उसे भावी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने वाली एजेंसी स्कूल ही है। अपने तमाम विचारों को अपने भविष्य के हाथों में सौंपते हुए कोई भी समाज उसमें नई संभावनाओं के तलाशे जाने की उम्मीद रखता है। यहां व्यक्तिवाद या समाजवाद अलग नहीं हैं। कोई भी समाज उसमें शामिल प्रत्येक व्यक्ति के समग्र विकास के प्रति ईमानदार रहकर ही स्वयं के प्रति ईमानदार रह सकता है। इस तरह स्वयं को निर्देशित करने पर स्कूल के समकक्ष और कुछ नहीं ठहरता, जैसा कि होरेस मान भी कहते हैं, “जहां कुछ भी नया बन रहा है, वहां एक पूर्ववर्ती हजार सुधारकों के बराबर है।”

जब भी हम शिक्षा में किसी नए आंदोलन पर चर्चा कर रहे हों तब व्यापक या सामाजिक दृष्टिकोण को खासतौर से ध्यान में रखना जरूरी हो जाता है। अन्यथा स्कूल संस्था या उसकी परम्परा में किसी भी किस्म के बदलावों को, उनके सर्वाधिक संक्रमण के दौर में कुछ खास शिक्षकों के दिमाग की मनमानी उपज मानकर खारिज किया जा सकता है या उनके बेहतरीन दौर में महज कुछ व्यापक सुधार मात्र तक सीमित माना जा सकता है और इस तरह की स्थितियों में स्कूल में बदलाव को बहुत आम-फहम ढंग से लिया जा सकता है। यह ऐसा ही है जैसे

रेल के इंजिन या टेलिग्राफ को निजी उपकरण मान लिया जाए। जिस तरह उद्योग और वाणिज्य के तौर-तरीकों में भी बदलाव आ रहे हैं, शिक्षण के तौर-तरीकों और शिक्षाक्रम में किए जा रहे बदलाव भी उसी तरह सिर्फ बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों की देन ही नहीं हैं बल्कि नए बन रहे समाज की जरूरतों को पूरा करने की दिशा में प्रयास भी हैं।

इसी के मद्देनजर मैं खासतौर से आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना चाहूंगा कि जिसे ‘नई शिक्षा’ कहा जा सकता

है उसे समाज में हो रहे व्यापक परिवर्तनों के मद्देनजर कैसे समझा जाए? क्या हम इस ‘नई शिक्षा’ को अपने समाज में हो रही अन्य

पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के साथ रहते हुए, उनकी देखभाल करते हुए अर्जित ज्ञान की छाया का अंशमात्र भी उनके बारे में कितने ही वस्तुपरक अध्यायों, सूचनाएं प्रदान करने के नाम पर तैयार की गई वस्तुनिष्ठ सामग्री प्रदान नहीं कर सकती। सिखाने के नाम पर ज्ञानेंद्रियों के प्रशिक्षण का कोई भी प्रयास पारिवारिक पेशों में दिलचस्पी और अंतरंगता के चलते ज्ञानेंद्रियों के वास्तविक उपयोग से अर्जित सतर्कता और समग्रता के अंशमात्र का भी मुकाबला नहीं कर सकता। शाब्दिक स्मृति को कुछ अध्यायों की मदद से बढ़ाया जा सकता है, विज्ञान और गणित के कुछ अध्याय तर्क क्षमता बढ़ाने वाले अनुशासनों के रूप में मददगार हो सकते हैं, लेकिन अंततः यह क्षेत्र किसी वास्तविक उद्देश्य को सामने रखकर किए जाने वाले काम जिससे वास्तव में कोई नतीजा हासिल होना है, के लिए आवश्यक सावधानी और निर्णय क्षमता की तुलना में तो कम या अवास्तविक प्रशिक्षण ही कहा जाएगा।

घटनाओं के साथ जोड़कर देख सकते हैं? यदि हम ऐसा करने में सफल होते हैं तो यह अपने अलगावपूर्ण चरित्र से मुक्त हो सकेगी और यह छात्रों के साथ कुछ खास व्यक्तियों द्वारा शिक्षण के तौर-तरीकों के आधार पर अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएं मात्र मानी जाने से भी मुक्त हो सकेगी। यह सामाजिक विकास की समूची प्रक्रियाओं के एक अंग के रूप में नजर आएगी और जैसा कि इसका चरित्र है यह ज्यादा अपरिहार्य भी नजर आएगी। तब चलिये पहले सामाजिक आंदोलन के मुख्य पहलुओं पर चर्चा करने और उसके बाद स्कूल की ओर रुख करते हुए यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि यह इस क्रम में स्वयं को सही जगह पर रखने के लिए किस तरह के प्रयासों के प्रमाण प्रस्तुत करती है। क्योंकि समूचे दृश्य पर एक साथ बात करना लगभग असंभव प्रतीत होता है। मैं इस बात का प्रयास करूंगा कि अपनी बात को आधुनिक स्कूल आंदोलन के एक खास पहलू, जिसे शारीरिक प्रशिक्षण कहा जाता है, तक ही सीमित रखूं और यह उम्मीद करूं कि बदलती सामाजिक परिस्थितियों के साथ इसका संबंध स्थापित हो पाएगा और हम क्रमशः अन्य शैक्षिक नवाचारों के बारे में भी इसी प्रकार बात करते चलेंगे।

मैं इस चर्चा में सामाजिक बदलावों के सवाल की बहुत बात नहीं करूंगा। मैं जिनकी चर्चा करूंगा वे सवाल भी

बहुत व्यापक हैं। पहला सामाजिक बदलाव जिसकी तरफ ध्यान जाता है और जो अन्य सभी को ढकता हुआ ही नहीं उन्हें नियंत्रित करता हुआ भी नजर आता है, वह है औद्योगिक बदलाव - विज्ञान के उपयोग ने अनेक महान अविष्कारों को जन्म दिया जिन्होंने बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया : उत्पादन के लक्ष्यों के रूप में एक ऐसे विश्वव्यापी बाजार का विकास हुआ। इस बाजार को आपूर्ति करने के लिए व्यापक उत्पादन केंद्रों का विकास हुआ, सभी भागों में इन उत्पादों को पहुंचाने के लिए संचार और वितरण

के सस्ते और त्वरित साधनों का विकास हुआ। इसकी शुरुआत भले ही धीमी रही हो, लेकिन यह बदलाव एक शताब्दी से ज्यादा पुराना नहीं है और इसके मुख्य पहलुओं में एक यह है कि यह उन लोगों के देखते-देखते हुआ है जो अभी जीवित हैं। यह यकीन करना मुश्किल लग सकता है कि इतिहास में इतनी तीव्र, इतनी व्यापक और इतनी सम्पूर्ण क्रांति भी हुई है। इस बदलाव ने दुनिया की तस्वीर बदल दी है, सिर्फ भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि राजनीतिक सीमाएं भी समाप्त हुईं, बदलीं मानो दुनिया के नक्शे महज कागज पर खिंची लकीरें मात्र हों; धरती के दूर-दराज के इलाकों में बसी आबादी शहरों में केन्द्रित होने लग गई, जीवन शैली में तेजी के साथ और आमूल परिवर्तन आया; प्रकृति के सत्तों की खोज के प्रति उत्सुकता बढ़ी और यह करना कहीं आसान भी हुआ और उनको जीवन में उतारा जाना न सिर्फ संभव हुआ बल्कि वाणिज्यिक दृष्टि से अनिवार्य भी हो गया। यहां तक कि हमारे धार्मिक विचार और रुचियां, जो कि हमारी प्रकृति से सबसे गहरे संबद्ध होने के कारण कहीं ज्यादा रूढ़ हैं, वे भी इस बदलाव के असर से अछूते नहीं रहे। ऐसे में यह नहीं माना जा सकता कि इस क्रांति ने शिक्षा को महज औपचारिक या सतही स्तर पर ही प्रभावित किया हो।

फैक्ट्री व्यवस्था के थोड़ा ही पीछे खड़ा है परिवार तंत्र और पास-पड़ोस का तंत्र। हम जो वर्तमान में हैं उन्हें ज्यादा नहीं महज दो-तीन पीढ़ी पीछे ही देखने की जरूरत है और हम उस समय में देख पाएंगे जब परिवार उन तमाम गतिविधियों का केंद्र था जो आज औद्योगिक उत्पादन के तहत तैयार होती हैं। अधिकांश इलाकों में पहने जाने वाले कपड़े न सिर्फ घरों में ही बनाए जाते थे, बल्कि ज्यादातर लोग भेड़ों से ऊन उतारने, धुनने, कातने और लूम में कपड़े बुने जाने के कामों से परिचित थे। सिर्फ एक बटन दबाने मात्र से घर रोशनी से सराबोर नहीं हो जाता था बल्कि इसके लिए भी पशुओं का शिकार कर उनकी चर्बी प्राप्त करने और उसमें डुबा कर बत्ती जलाने तक की एक पूरी श्रम साध्य प्रक्रिया अपनाई जाती थी। आटा, लकड़ी, भोजन, भवन निर्माण सामग्री, घर का फर्नीचर, यहां तक कि धातु की वस्तुएं जैसे कील, कब्जा, हथौड़ी जैसा सामान भी आस-पास की दुकानों से तैयार होकर आता था जो दिनभर खुली रहती थीं, न सिर्फ आप कभी भी उनका निरीक्षण कर सकते थे बल्कि बहुत बार यह दुकानें आस-पास के लोगों की मेल-मुलाकात का अड्डा भी हुआ करती थीं। उत्पादन की पूरी प्रक्रिया सबके सामने खुली थी, खेत में कच्चे माल की उपज से लेकर वास्तव में उपयोग में लेने के लिए तैयार अंतिम उत्पाद बनने तक की पूरी प्रक्रिया। इतना ही नहीं परिवार का प्रत्येक सदस्य इस प्रक्रिया में कुछ-न-कुछ काम कर अपना योगदान अदा किया करता था। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते थे, वे भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार इस समूची प्रक्रिया के रहस्यों के साझीदार बनने लगते थे। वास्तविक भागीदारी के स्तर तक आना व्यक्तिगत और तात्कालिक जरूरत का

मसला भी हुआ करता था।

हम इस पूरी प्रक्रिया में निहित अनुशासन और चरित्र निर्माण संबंधी घटकों को नजरअंदाज नहीं कर सकते, जैसे: व्यवस्था और उद्यम की आदतों का प्रशिक्षण, जिम्मेदारी और कुछ करने के प्रति दायित्वबोध, दुनिया में आए हैं तो उत्पादन में योगदान करें यह अहसास। इस व्यवस्था में हमेशा कुछ न कुछ किए जाने की और परिवार का प्रत्येक सदस्य अन्यो के साथ सहयोग करते हुए अपनी-अपनी भूमिका को ईमानदारी के साथ निभाए इसकी आवश्यकता बनी रहती थी। किसी के भी व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके द्वारा किए जाने वाले काम से किया जाता था। इस तरह हम शैक्षिक उद्देश्यों में वास्तविक सामग्री, चीजों के बनने की वास्तविक प्रक्रियाओं के विभिन्न चरणों, और उनकी सामाजिक आवश्यकताओं के रूप में प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष, निकट और आंतरिक संबंध को नजरअंदाज नहीं कर सकते। इस पूरी प्रक्रिया में लगातार अवलोकन, कौशल, रचनात्मकता और कल्पनाशीलता, तर्कसंगत चिन्तन और वास्तविकताओं के साथ प्रत्यक्ष संपर्क से अर्जित यथार्थबोध का निरंतर प्रशिक्षण निहित था। घरेलू कताई-बुनाई, आटा-चक्की, आरा-मशीन, तांबे की दुकान और मोची के काम जैसे कार्यों में निहित शिक्षा निरंतर जारी रहने वाली प्रक्रिया थी।

पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के साथ रहते हुए, उनकी देखभाल करते हुए अर्जित ज्ञान की छाया का अंशमात्र भी उनके बारे में कितने ही वस्तुपरक अध्यायों, सूचनाएं प्रदान करने के नाम पर तैयार की गई वस्तुनिष्ठ सामग्री प्रदान नहीं कर सकती। सिखाने के नाम पर ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण का कोई भी प्रयास पारिवारिक पेशों में दिलचस्पी और अंतरंगता के चलते ज्ञानेन्द्रियों के वास्तविक उपयोग से अर्जित सतर्कता और समग्रता के अंशमात्र का भी मुकाबला नहीं कर सकता। शाब्दिक स्मृति को कुछ अध्यायों की मदद से बढ़ाया जा सकता है, विज्ञान और गणित के कुछ अध्याय तर्क क्षमता बढ़ाने वाले अनुशासनों के रूप में मददगार हो सकते हैं, लेकिन अंततः यह क्षेत्र किसी वास्तविक उद्देश्य को सामने रखकर किए जाने वाले काम जिससे वास्तव में कोई नतीजा हासिल होना है, के लिए आवश्यक सावधानी और निर्णय क्षमता की तुलना में तो कम या अवास्तविक प्रशिक्षण ही कहा जाएगा। वर्तमान में उद्योगों के केंद्रीकरण और श्रम के विभाजन ने वास्तव में घरों के अंदर या पास-पड़ोस में होने वाले पेशों को - कम से कम शिक्षा के उद्देश्यों से तो निष्कासित कर ही दिया है। लेकिन सिर्फ उन पुराने दिनों के लौट आने की उम्मीद में उनके चले जाने का अफसोस करने का भी कोई औचित्य नहीं है, जब बच्चे ज्यादा विनम्र, श्रद्धालु और आज्ञाकारी हुआ करते थे। जो बदलाव आए हैं वे बहुत मौलिक हैं और उन्हीं के समान शिक्षा में भी मौलिक बदलाव यदि हों तो वे पर्याप्त होंगे। हमें इन बदलावों से मिले फायदों के महत्त्व को भी स्वीकारना होगा - जैसे कि समाज में सहनशीलता बढ़ी है, सामाजिक न्याय का विस्तार हुआ है, मानवीय

स्वभाव के साथ व्यापक तादात्म्य स्थापित हुआ है, सामाजिक स्थितियों को समझने और चारित्रिक संकेतों को समझने के प्रति जागरूकता में ज्यादा तीक्ष्णता आई है, व्यक्तित्वों के अंतर्विरोधों को ज्यादा सटीकता के साथ समझा जाने लगा है और व्यापक वाणिज्यिक गतिविधियों के साथ संपर्क बना है। इन पहलुओं का शहरों में पले-बढ़े बच्चों के जीवन पर ज्यादा असर पड़ा है। हालांकि एक वास्तविक समस्या भी है - हम कैसे इन तमाम लाभप्रद स्थितियों को बरकरार रखते हुए स्कूलों में जीवन के उन दूसरे पक्षों को भी जोड़ सकें - जैसे कि ऐसे पेशे जो न सिर्फ व्यक्तिगत जिम्मेदारियों के बारे में बताएं बल्कि बच्चे को जीवन के भौतिक यथार्थ के संदर्भ में भी प्रशिक्षित करें?

जब हम स्कूलों की ओर पलट कर देखते हैं तो हम पाते हैं कि वर्तमान स्कूल व्यवस्था में पाई जाने वाली सर्वाधिक चौकाने वाली प्रवृत्तियों में से एक शारीरिक श्रम, हस्त कौशल या घरेलू कामों के नाम पर सिखाए जाने वाले कामों के नाम पर बच्चों को सिलाई और खाना पकाने के बारे में बताया जाता है।

यह भी इस सजगता के साथ और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए नहीं कराया जाता है कि स्कूल को बच्चों को उन पक्षों से भी परिचित कराना चाहिए जिन्हें बच्चे पहले परिवारों में रहते हुए सीख लेते थे, बल्कि सहज ही यह स्वीकार कर लिया जाता है कि इस तरह के काम बच्चों को जोड़े रखते हैं और इन्हें सीखने का अवसर और कहीं नहीं मिलता। इस काम के वास्तविक उपयोग के बारे में चेतना क्षीण है कि अक्सर यह काम आधे मन से, संशय के साथ और अलगाव के साथ संपन्न होता है। इन कामों के करने के लिए दिए जाने वाले तर्क अक्सर नितांत अपर्याप्त और यहां तक बहुत बार तो पूर्णतः गलत होते हैं।

यहां तक कि यदि हम स्कूली व्यवस्था में इन विषयों को लागू किए जाने के जबरदस्त समर्थकों से भी बात करें तो मेरे विचार में हमें इसके पीछे यही कारण सुनने को मिलेगा कि इन कामों में बच्चे तुरंत दिलचस्पी लेते हैं और पूरी एकाग्रता के साथ शामिल होते हैं।

यह काम उन्हें निष्क्रिय ग्राहक बनाने के बजाय सक्रिय और सजग रखते हैं; इन्हें करने से वे ज्यादा लायक और उपयोगी बनते हैं और अंततः परिवार में ज्यादा मदद करने में रुचि लेते हैं; कुछ हद तक यह काम भावी जीवन में उन पर आने वाली व्यावहारिक जिम्मेदारियों के लिए भी उन्हें तैयार करते हैं - जैसे लड़कियां यदि आगे चल कर रसोईया या दरजी न भी बन पाएं तो ज्यादा काबिल गृहिणियां तो बन ही सकेंगी, इसी तरह लड़कों को भी भविष्य के लिए इन पेशों के लिए प्रशिक्षण मिल सकेगा (जैसे कि हमारी शिक्षा व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य व्यापार स्कूलों का पूरक मात्र होना है)। मैं इन तर्कों के महत्त्व को गौण करके नहीं देखता। लेकिन यह सब तर्क इस बारे में नजरिए को बहुत संकुचित कर देते हैं। लकड़ी या धातु के साथ काम करने, बुनाई, सिलाई, पाक कला आदि को अलग-अलग विषय मानने की बजाय जीवन शैली की तरह लिया जाना चाहिए।

हमें उन्हें उनके सामाजिक महत्त्व के संदर्भ में देखना चाहिए, उन प्रक्रियाओं के विविध प्रकारों के रूप में, जिनके माध्यम से समाज का कारोबार चलता रहता है। सामुदायिक जीवन की कुछ आधारभूत आवश्यकताओं के बारे में बच्चे की समझ विकसित करने वाली एजेंसी, और उन तरीकों के रूप में जिनसे मनुष्य की अंतर्दृष्टि और कौशल का विकास होता है और वह इन आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है, संक्षेप में कहा जाए तो ऐसे उपकरण जिनकी मदद स्कूल कुछ पाठ पढ़ाने वाले एक अलग स्थान की बजाय वास्तव में सक्रिय सामुदायिक जीवन का एक रूप बन सके।

समाज से आशय व्यक्तियों के ऐसे

समूह से है जो एक साथ हैं क्योंकि वे कुछ साझा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, साझा प्रतिबद्धता के साथ एक दिशा में काम करते हैं। यह साझा आवश्यकताएं और उद्देश्य विचारों की विकसित होती पारस्परिकता और सहानुभूतिपूर्ण भावनाओं के विकास की मांग करते हैं। वर्तमान स्कूल स्वयं को सहज सामाजिक इकाई के रूप में विकसित करने में नाकाम हैं, इसका आधारभूत कारण इसी साझा उत्पादक गतिविधि की अनुपस्थिति है। खेल के मैदान में यह

स्कूल स्वयं को सहज सामाजिक इकाई के रूप में विकसित करने में नाकाम हैं, इसका आधारभूत कारण इसी साझा उत्पादक गतिविधि की अनुपस्थिति है।

खेल के मैदान में यह

सामाजिकता तुरंत विकसित होती है और इसका होना अवश्यभावी होता है। वहां करने के लिए कुछ होता है, एक गतिविधि होती है,

जिसमें श्रम के विभाजन की आवश्यकता होती है, नेता और उसके पीछे चलने वालों की आवश्यकता होती है, आपसी सहयोग और प्रतिस्पर्धा की

आवश्यकता होती है। स्कूल के कमरों में इस सामाजिकता को जोड़ने वाले तत्वों और उद्देश्यों का एक जैसा अभाव है। वर्तमान

स्कूल व्यवस्था की त्रासद कमजोरी यह है कि यह सामाजिक व्यवस्था के तहत भावी सदस्यों का उस माध्यम में निर्माण करने का प्रयास करता है, जिसमें सामाजिक प्रतिबद्धता की स्थितियों का नितांत अभाव है।

सामाजिकता तुरंत विकसित होती है और इसका होना अवश्यंभावी होता है। वहां करने के लिए कुछ होता है, एक गतिविधि होती है, जिसमें श्रम के विभाजन की आवश्यकता होती है, नेता और उसके पीछे चलने वालों की आवश्यकता होती है, आपसी सहयोग और प्रतिस्पर्द्धा की आवश्यकता होती है। स्कूल के कमरों में इस सामाजिकता को जोड़ने वाले तत्वों और उद्देश्यों का एक जैसा अभाव है। वर्तमान स्कूल व्यवस्था की त्रासद कमजोरी यह है कि यह सामाजिक व्यवस्था के तहत भावी सदस्यों का उस माध्यम में निर्माण करने का प्रयास करता है, जिसमें सामाजिक प्रतिबद्धता की स्थितियों का नितांत अभाव है।

फर्क तब सामने आता है जब पेशों का निर्धारण होता है तब स्कूली जीवन से मिली मदद को शब्दों में बता पाना कठिन प्रतीत होता है; यह फर्क लक्ष्य, प्रतिबद्धता और वातावरण का फर्क है। जब कोई व्यक्ति किसी व्यस्त रसोई में, जहां बच्चों का समूह खाना बनाने की तैयारी में जुटा हुआ हो, प्रवेश करता है तो कम और ज्यादा सक्रिय भागीदारी या पूर्णतः निष्क्रिय ग्राहक और स्व-अनुशासित बर्हिगामी ऊर्जा के बीच का मनोवैज्ञानिक फर्क किसी को भी साफ-साफ नजर आना बहुत ही स्वाभाविक होगा। वास्तव में जो सामाजिक बदलाव में स्कूल की भूमिका को लेकर बहुत आश्वस्त होंगे उन्हें झटका लग सकता है। लेकिन सामाजिक आचरण में बदलाव का नजर आना निश्चित है। तथ्यों और सत्यों को सिर्फ ग्रहण करते रहना एक इतनी व्यक्तिगत किस्म की गतिविधि है कि इसका स्वार्थी व्यवहार में परिणत होना बहुत ही स्वाभाविक होगा। ऐसे ज्ञान को हासिल करने से, जिसका कोई सामाजिक लक्ष्य न हो, अर्जित सफलता का कोई सामाजिक लाभ भी नहीं होता। इस शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य प्रतिस्पर्द्धा होता है, वह भी बहुत संकुचित अर्थों में - जिसके तहत पाठ के दोहराव करने या परीक्षाएं उत्तीर्ण करने के नतीजों की तुलना इस आधार पर की जाती है कि कौनसा बच्चा ज्यादा से ज्यादा सूचनाओं को ग्रहण करने में अन्य सबसे आगे रहता है। यह प्रवृत्ति सब तरफ इस कदर व्याप्त है कि स्कूल में एक बच्चे के लिए दूसरे की मदद करना लगभग अपराध की तरह देखा जाने लगता है। स्कूल का काम जहां महज पाठ याद करने तक सीमित होता है वहां एक-दूसरे की मदद करने को बहुत स्वाभाविक ढंग से विकसित हो सकने वाले परस्पर सहयोग की बजाय अपने साथी को उसके निर्धारित कर्तव्यों से च्युत करने की कोशिश के रूप में देखा जाता है। जहां सक्रिय ढंग से काम होता हो, वहां यह स्थिति बिल्कुल उलट होती है। वहां दूसरों की मदद करना ऐसा सहयोग नहीं होता जो सामने वाले को किसी तरह की कमतरी का अहसास कराए बल्कि यह सहयोग सत्ता से मुक्त करता है और मदद प्राप्त करने वाले को भी बराबर खुशी का अहसास कराता है। तब मुक्त संवाद, विचारों के आदान-प्रदान, सुझाव, पूर्व अनुभवों से प्राप्त सफलता और विफलता रूपी परिणामों के लिए प्रतिबद्धता दोहराव का सर्वोच्च

स्वर हो जाता है। तब जो होड़ होती है वह व्यक्तियों के बीच तुलना के रूप में हो तब भी व्यक्ति विशेष द्वारा अर्जित की गई सूचना की मात्रा से नहीं बल्कि उनके द्वारा किए गए काम की गुणवत्ता के आधार पर होती है - जो कि समाज का वास्तविक मानक मूल्य है। ऐसे में अनौपचारिक लेकिन ज्यादा व्यापक तरीके से स्कूल का जीवन अपने आप को सामाजिक आधार पर संगठित कर पाता है।

इसी संगठन में स्कूल का अनुशासन और व्यवस्था का सिद्धांत भी निहित है। निश्चय ही व्यवस्था एक ऐसी चीज है जिसके कुछ लक्ष्य निर्धारित होते हैं। यदि आपका लक्ष्य यह है कि चालीस-पैंतालीस बच्चों का समूह कुछ खास पाठों का एक शिक्षक के सामने दोहरान कर सके तो आपका अनुशासन भी उसी लक्ष्य को पाने के अनुरूप होगा। लेकिन यदि लक्ष्य सामाजिक सहयोग और समुदायिक जीवन के प्रति प्रतिबद्धता का विकास है तो अनुशासन उस दायरे से बाहर आकर इस लक्ष्य से संबंधित होगा। ऐसी जगहों पर व्यवस्था कुछ कम होगी जहां चीजें होने की प्रक्रिया में हैं; किसी भी व्यस्त कार्यशाला में थोड़ी अव्यवस्था होती है; वहां पूरी तरह शांति नहीं होती; वहां लोग एक खास भंगिमा में ही नहीं बैठे रहेंगे; उनके हाथ बगल में दबे हुए नहीं होंगे; वे अपनी किताबों को खास तरीके से ही नहीं पकड़ेंगे। वे कई तरह की चीजें कर रहे हैं; इसलिए थोड़ी अफरा-तफरी भी है; हलचल भी है जो गतिविधि के जारी रहने से उत्पन्न हुई है। लेकिन उस पेशे से इतर, उन कामों से इतर जिनके किए जाने के परिणामस्वरूप कुछ उत्पादन होना है, और उन्हें सामाजिक और सहयोगपूर्ण ढंग से किए जाने से इतर इस तरीके में निहित अपने किस्म का एक अनुशासन भी है। जब हम इस नजरिए पर पहुंच जाते हैं तो स्कूल में अनुशासन के बारे में हमारी पूरी अवधारणा ही बदल जाती है। कठिन परिस्थितियों में हम सभी जानते हैं कि अनुशासन ही है जो हमारी मदद करता है, हमने जो सीखा है वही हमें निर्देशित करता है, यह जीवन अपने आप सिखाता है। हम अनुभव से सीखते हैं, किताबों और दूसरों की कही बातों से भी हम सीखते हैं लेकिन तब ही जब वे अनुभव से उपजी बातें होती हों, सिर्फ उद्धरणों से नहीं। लेकिन स्कूल इससे बहुत अलग-थलग रहते हैं, जीवन की सामान्य स्थितियों और लक्ष्यों से बहुत दूर रहते हैं, बच्चों को अनुशासन सीखने के लिए जहां भेजा जाता है वह ऐसी जगह है जहां अनुशासन को अनुभव कर पाना सर्वाधिक दुष्कर काम है - सारे अनुशासनों से बड़ा अनुशासन का नाम हो जाता है। ऐसा तब होता है जब बहुत संकीर्ण और परम्परागत स्कूली अनुशासन की छवि का वर्चस्व होता है जिसके साथ इस बात का खतरा बहुत ज्यादा होता है वह उस सघन और कहीं व्यापक अनुशासन को नजरअंदाज करे जो रचनात्मक कार्य में शामिल होने से अर्जित किया जाता है, जो एक ऐसे नतीजे को हासिल करने में योगदान करने से अर्जित होता है जो अपनी प्रकृति में ज्यादा सामाजिक होता है और अपने स्वरूप में ज्यादा वास्तविक होता है - और इस तरह

एक ऐसे स्वरूप में होता है जिसमें जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है और सही निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं।

स्कूल में इन विविध कार्यों को शामिल किए जाने के संदर्भ में खास बात यह है इनके माध्यम से स्कूल की समूची ऊर्जा में बदलाव आ सकता है। इस तरह स्कूल सिर्फ पाठ पढ़कर सीखने की एक ऐसी जगह बनने की बजाय, जिसका भविष्य में किए जाने वाले संभावित कामों के साथ बहुत अमूर्त या क्षीण संबंध नजर आता हो, स्वयं को जीवन से जोड़ने की संभावना बनाते हैं, वे बच्चों के स्वाभाविक आवास बनने की संभावना बनाते हैं, जहां निर्देशित जीवन के माध्यम से बच्चे सीखते हैं। उन्हें एक ऐसा छोटा समुदाय बनने का अवसर मिलता है, जिसका लगातार विकास हो रहा है। यह आधारभूत तथ्य है और इसी से निरंतर और व्यवस्थित निर्देशों का स्रोत निकलता है। इस तरह बताई गई उद्यमी व्यवस्था के तहत बच्चे काम में हिस्सेदारी महज हिस्सेदारी करने के लिए नहीं करते बल्कि वे उत्पादन में सहयोग कर रहे होते हैं। इस तरह शैक्षणिक परिणाम वास्तविक होते हुए भी मामूली और अन्य बातों पर निर्भर होते हैं। लेकिन स्कूलों में अपनाए जाने वाले खास तरह के पेशे

आर्थिक दबाव से पूर्णतः मुक्त रखे जाते हैं, क्योंकि इन प्रयासों का लक्ष्य उत्पादों का आर्थिक मूल्य बताना नहीं बल्कि सामाजिकता और अंतर्दृष्टि का विकास करना होता है। इस तरह संकीर्ण उपयोगिता से मुक्ति, मानवीय ऊर्जा की संभावनाओं के प्रति खुलापन, इन सक्रिय गतिविधियों को कला, विज्ञान और इतिहास केन्द्रों की सहयोगी गतिविधियां बनाता है।

विज्ञान के सभी विषयों को भूगोल में मिलते हुए देखा जा सकता है। भूगोल की खासियत यह है कि यह धरती को मनुष्य के स्थाई घर के रूप में प्रस्तुत करता है। मनुष्य के साथ संबंध के अभाव में यह दुनिया दुनिया होने से कुछ कमतर रह जाती है। मानवीय उद्यमिता और उपलब्धियां, यदि उनकी जड़ धरती में गहरे पैठी न हो तो क्या है, जिसका कोई नामलेवा भी न हो। धरती मनुष्य के सभी प्रकार के भोजन का एकमात्र स्रोत है, यही उसकी शरणगाह है और यहीं से उसे संरक्षण प्राप्त होता है, उसकी सभी गतिविधियों के लिए कच्चा माल उसे इसी से मिलता है और यही

वह घर है जहां वह अपनी तमाम उपलब्धियों को मानवीय या आदर्श के आवरण से देखता है। यही विशाल खेत है, खदान है,

ऊर्जा और गर्मी, प्रकाश और विद्युत का स्रोत है, वह महान दृश्य जिसमें हमारे समंदर, नदियां, पर्वत और मैदान शामिल हैं जिनमें से ही हमारी सारी खेती, खनन और उत्पादन और वितरण की तमाम एजेंसियां निकलती हैं, लेकिन सभी उसका अंशमात्र ही हैं। इसी वातावरण से निकलने वाले कामों ने मनुष्यमात्र के लिए उसकी ऐतिहासिक और राजनीतिक प्रगति को संभव बनाया। इन्हीं कामों के माध्यम से ही प्रकृति की बौद्धिक और भावनात्मक व्याख्याओं का विकास संभव हुआ। इन्हीं के माध्यम से हम दुनिया में और दुनिया के प्रति कोई भी काम करते हैं और उसके अर्थ को समझते हैं और महत्त्व को आंकते हैं।

शिक्षा की भाषा में कहा जाए तो स्कूल में यह पेशे महज प्रायोगिक कार्य या भावी रोजगार अर्जित करने के तरीके मात्र नहीं हैं, बेहतर रसोइया, दर्जी या बढ़ई बनने के कौशल मात्र नहीं हैं बल्कि यह ऐसी प्राकृतिक सामग्रियां और प्रक्रियाएं हैं जो बच्चों को मनुष्य के ऐतिहासिक विकास के बारे में जानने के लिए वैज्ञानिक

दृष्टि प्रदान करने में सहायक हो सकती हैं। इसके वास्तविक महत्त्व को सामान्य चर्चा के बजाय वास्तविक स्कूल के किसी उदाहरण के द्वारा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

स्कूलों में आने वाले मेहमानों को सामान्यतः दस से बारह-तेरह साल के लड़के-लड़कियों को सिलाई या बुनाई जैसे कामों में व्यस्त देखना सर्वाधिक चौंकाता है। यदि हम इसे सिर्फ लड़के-लड़कियों के सिलाई सीखने, बटन टांकने में सक्षम होने या पैबंद लगाना जानने के नजरिए से देखते हैं तो हमारी दृष्टि प्रयोजनवादी और बहुत संकीर्ण होगी, जो इस तरह के कामों को स्कूल में कराए जाने को मुश्किल से ही कोई मजबूत आधार देने का काम कर सकेगी। लेकिन यदि हम इसे दूसरे नजरिए से देखें, तो हम पाएंगे कि यह कार्य बच्चों को उस प्रस्थान बिंदु को समझने में मदद करते हैं जहां से वह इतिहास में मनुष्य मात्र द्वारा की गई प्रगति मात्र को समझने और उसमें प्रयुक्त सामग्रियों और उनके तकनीकी सिद्धांतों को समझने में मदद करता है। इन पेशों के साथ संबंध के माध्यम से मनुष्य के विकास के साथ संबंध को पुनःस्थापित किया जा सकता

है। उदाहरण के लिए बच्चों को सबसे पहले कच्चा माल दिया जाए, जैसे कि कपास का पौधा या फूल या भेड़ की खाल से निकाली गई ऊन (यदि हम उन्हें उन स्थानों पर ले जा सकें जहां भेड़ की ऊन उतारी जाती है तो वह और भी बेहतर होगा।)। इसके बाद में इन दोनों के उपयोग को वे किस तरह समझते हैं उसका अध्ययन किया जाए। उदाहरण के लिए उनसे रूई और ऊन के धागों के बीच तुलना कराई जा सकती है। मुझे जब तक बच्चों ने नहीं बताया मैं नहीं जानता था कि सूत के उद्योग का विकास ऊन उद्योग के बाद होने का कारण यह रहा होगा कि कपास के बीज या फूल में से हाथ से रूई निकालना और सूती धागा बनाना ऊन की तुलना में ज्यादा श्रमसाध्य और ज्यादा समय की मांग करने वाला पेशा था। बच्चों का एक समूह आधे घंटे तक कपास के बीज से रूई निकालने का काम करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा था क्योंकि वे इतने समय में एक औंस से भी कम रूई निकाल पाए थे। अब वे यह आसानी से समझ सकते थे कि एक व्यक्ति हाथ से एक दिन में एक पाउंड रूई निकाल सकता था और उन्हें यह समझने में मदद मिली कि उनके पूर्वज सूती कि बजाय ऊनी कपड़े क्यों पहना करते थे। दूसरा कारण जो उन्हें समझ में आया वह सूती धागे का ऊनी धागे से छोटा होना भी था, एक बराबर सूती और ऊनी धागे से बना कपड़ा सूती में एक इंच का दसवें हिस्से के जितना भी नहीं होता जितने में ऊनी धागे से पूरा एक इंच बन जाता है। इसके अलावा सूती धागा काफी चिकना होता है और उस तरह आपस में गुंथता नहीं है, जबकि ऊनी धागे में थोड़ा खुरदुरापन होता है और वह आपस में गुंथ जाता है, इसलिए बुनाई में ज्यादा आसान होता है। बच्चों ने यह सब खुद करके जाना, उन्होंने वास्तविक सामग्री के साथ काम करने के साथ अपने सामने आए सवालों के जवाब तलाशे, जिसमें शिक्षक सवाल रखने और सुझाव देने के रूप में उनकी मदद कर रहे थे।

इसके बाद उन्होंने इन धागों से कपड़ा बुनने की प्रक्रिया पर भी काम किया। उन्होंने रूई को धुने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले आरंभिक खांचों की फिर से खोज की - इसके लिए उन्होंने कुछ सादा तख्ते लिए जिनमें नुकीली पिनें लगी हुई थीं, जिससे ऊन को धुना जा सके। इसके बाद ऊन की कताई के लिए भी अपनी तरह से सरलतम प्रक्रिया की खोज की - एक छेद वाला पत्थर या कुछ दूसरी वजनदार वस्तु जिसके अंदर से ऊन को निकालने के बाद उसे बंट कर धागा बुना। इस तरह जमीन पर बिखरे धागे को बच्चों ने अपने हाथों संभाल कर उसका गोला बनाया। इस तरह बच्चों का ऐतिहासिक क्रम में हुए अविष्कारों के साथ परिचय हुआ, जिसके लिए खुद उन्होंने प्रयोग किए, उनकी आवश्यकता को महसूस किया, उनके प्रभावों को स्वयं अपने अनुभवों से जाना, इस तरह वे सिर्फ उस खास उद्यम के बारे में ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन के बारे में भी जान रहे थे, इस तरह पूरी प्रक्रिया से गुजरते हुए उसकी समीक्षा करते हुए वे वर्तमान लूम व्यवस्था के क्रम को जान रहे थे

और हमारे वर्तमान में उपलब्ध बिजली और विज्ञान के प्रयोग से विकसित हुए तंत्र के पीछे की तमाम बातों को समझ रहे थे। मुझे यह बताने की जरूरत नहीं कि इस प्रक्रिया में विज्ञान किस तरह शामिल है - धागों के अध्ययन, उनके भौगोलिक गुणों को जानने, उन परिस्थितियों को समझने जिनमें कच्चा माल पैदा होता है, उत्पादन और वितरण के विशाल केंद्रों को समझने, उत्पादन के यंत्रों में कितनी भौतिकी निहित है और न उन ऐतिहासिक पक्षों की चर्चा करने की आवश्यकता है कि उन अविष्कारों ने मनुष्यता को किस तरह प्रभावित किया। आप समूची मनुष्यता के इतिहास को कपास के बीज, रूई और ऊन, उनके धागे के निर्माण और उससे वस्त्रों के बनने की प्रक्रिया में केंद्रित करके समझ सकते हैं। मेरा आशय यह नहीं है कि यही एकमात्र या बेहतरीन तरीका है। लेकिन यह सच है कि मानवता के इतिहास में कई महत्वपूर्ण रास्ते इस तरह खुलते हैं - सामान्य राजनीतिक घटनाओं और उनके काल क्रम को पढ़ने की बजाय इस तरह के अनुभव से गुजरकर इतिहास के ज्यादा महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदुओं और उसे दिशा देने वाले कारणों को समझा जा सकता है।

अब इस एक उदाहरण को ही लें कि कपड़े के बनने में धागे का प्रयोग होता है (और निश्चय ही मैंने इसके आधारभूत एक-दो घटकों का ही जिक्र किया है) लेकिन यह प्रत्येक पेशे और उसमें प्रयुक्त प्रत्येक सामग्री और अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं के बारे में उतना ही सच है। काम में शामिल होने से बच्चे के सामने एक वास्तविक लक्ष्य होता है; इससे उसे प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है; इसके द्वारा उसका वास्तविकता के साथ संबंध स्थापित होता है। यह प्रक्रिया इतना सब करती है लेकिन इसके साथ ही लगातार इसका रूपांतरण ऐतिहासिक सामाजिक मूल्यों के साथ ही वैज्ञानिक समानता के रूप में भी होता रहता है और यह पेशा बच्चे के लिए अपनी सीमाओं से मुक्त होता जाता है। बच्चे के मस्तिष्क के सत्ता और ज्ञान के संबंध में विकसित होते जाने के साथ ही यह महज एक खुशनुमा पेशा नहीं रह जाता बल्कि यह एक माध्यम, उपकरण या अंग बन जाने के रूप में हस्तांतरित होता है।

इसका विज्ञान के अध्यापन पर भी अपनी तरह का असर होता है। वर्तमान स्थिति में सभी गतिविधियों की सफलता के लिए कहीं न कहीं या किसी न किसी रूप में वैज्ञानिक विशेषज्ञता की ओर निर्देशित होना होता है - यह एक तरह से व्यावहारिक विज्ञान का मसला है। इस संबंध को शिक्षा में अपनी जगह तलाशनी चाहिए। स्कूल में कराया जाने वाला कथित शारीरिक या औद्योगिक पेशा बच्चों को समझने के लिए उन्हें विज्ञान से परिचय का अवसर ही उपलब्ध नहीं कराता है, उन्हें भौतिकतावादी ही नहीं बनाता है या प्रयोजन से भयभीत ही नहीं करता है या सिर्फ हाथ और आंख के द्वारा काम में आने वाला एक उपकरण मात्र ही नहीं बनाता है

बल्कि इस तरह अर्जित वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि आधुनिक सामाजिक जीवन में स्वतंत्र और सक्रिय भागीदारी के लिए महत्त्वपूर्ण उपकरण बन जाता है। प्लेटो ने कहा था कि दास वह व्यक्ति है जिसके कार्य में उसके विचार व्यक्त नहीं होते बल्कि किसी अन्य के विचारों को वह प्रकट करता है। प्लेटो के समय की तुलना में हमारे समय में यह कहीं महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या बन गई है। काम की विधियों, प्रयोजन और समझ उसे करने वाले व्यक्ति की चेतना में हो ताकि उसके द्वारा किया जाने वाले कार्य का खुद उसके लिए कोई अर्थ हो।

जब स्कूल में इन पेशों को इस व्यापक और उदार तरीके से अपनाया जाता है तब उन्हें लेकर दर्ज कराई जाने वाली इन आपत्तियों पर मैं सिर्फ अचंभित ही हो सकता हूँ कि यह पेशे स्कूल के लिए अनुपयुक्त हैं क्योंकि यह भौतिकतावादी, प्रयोजनवादी हैं और अपनी प्रकृति में यह पेशे बहुत निम्न स्तर के हैं। कभी-कभी मुझे लगता है कि इस तरह की आपत्तियां दर्ज कराने वाले किसी दूसरी ही दुनिया में रहते हैं। हम जिस दुनिया में रहते हैं उसमें से अधिकांश लोग किसी न किसी पेशे में लगे हुए हैं, उनके पास करने के लिए कुछ न कुछ होता है। कुछ प्रबंधक हैं तो कुछ उनके मातहत हैं। इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एक या दूसरे किसी भी काम में लगे व्यक्ति के पास ऐसी शिक्षा हो कि वह अपने रोजमर्रा के काम के व्यापक महत्त्व को मनुष्यता के लिए जाने। आज कितने लोग जो किसी न किसी रोजगार से जुड़े हैं वे जिन मशीनों पर काम करते हैं उसका एक पुर्जा मात्र बन कर रह गए हैं। इसके लिए कुछ हद तक खुद मशीन की प्रकृति जिम्मेदार है तो बहुत हद तक वह व्यवस्था भी जिम्मेदार है जो उन मशीनों से प्राप्त होने वाले उत्पादन पर बहुत ज्यादा जोर देती है; लेकिन इससे भी कहीं ज्यादा इस स्थिति के लिए यह सच्चाई जिम्मेदार है कि कार्यकर्ता को उसके कार्य में निहित सामाजिक और वैज्ञानिक मूल्यों को समझने के लिए अपनी कल्पनाशक्ति और संवेदना के विस्तार का कोई अवसर उपलब्ध नहीं होता। वर्तमान में औद्योगिक व्यवस्था के मूल में निहित अन्तःप्रेरणा के प्रति स्कूली वर्षों के दौरान या तो पूर्णतः उपेक्षा का बर्ताव किया जाता है या फिर वह उन वर्षों में पर्याप्त विकृत की जा चुकी होती है। जब तक बचपन और युवावस्था के वर्षों में निर्माण और उत्पादन की अन्तःप्रेरणा को व्यवस्थित रूप से समझा नहीं जाता है, जब तब उन्हें ऐतिहासिक संदर्भ में व्याख्या करने, वैज्ञानिक तरीकों के साथ समझ और नियंत्रण के साथ सामाजिक दिशा में प्रशिक्षित नहीं किया जाता है, तब तक निश्चय ही हम हमारी व्यवस्था में व्याप्त आर्थिक बुराइयों के स्रोतों का पता लगाने की ही स्थिति में नहीं हैं, उनका मुकाबला करना या उनका प्रभावी ढंग से मुकाबला करना तो दूर की बात है।

यदि हम कुछ शताब्दी पीछे मुड़कर देखें तो सीखने के क्षेत्र

में पूरा एकाधिकार होता था। सीखने पर *आधिपत्य* इस लिहाज से अधिक उपयुक्त शब्द कहा जा सकता है। सीखना वर्ग से जुड़ा मसला था। यह सामाजिक स्थितियों का सीधा परिणाम था। ऐसे साधन अस्तित्व में ही नहीं थे कि बहुसंख्यक लोग बौद्धिक संपदा हासिल कर पाते। क्योंकि वह तो पांडुलिपियों के रूप में संग्रहीत थी और छुपी हुई थी। इसके अलावा वे भी बहुत कम तादाद में थीं और उनका किसी भी रूप में उपयोग करने के लिए उनके साथ भारी मशक्कत की आवश्यकता थी। सीखने के लिए पांडित्य की आवश्यकता और सत्य का खजाना खास हाथों में सुरक्षित होने, जो उसे आम जनता तक पहुंचने से रोकते थे, जैसी स्थितियां इन्हीं हालात को बयान करती हैं। लेकिन जिस औद्योगिक क्रांति की हम बात कर रहे हैं उसी के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में हालात बदले। छापे की खोज हुई और उसका वाणिज्यिक उपयोग शुरू हुआ। किताबों, पत्रिकाओं और अखबारों की तादाद बढ़ती गई और उनके दाम घटते गए। रेल के इंजन, टेलीग्राफ, त्वरित और द्रुतगामी संचार के साधन विकसित होते चले गए। यात्रा करना अब आसान हो गया; एक से दूसरी जगह आने-जाने की आजादी के साथ विचारों के आदान-प्रदान की संभावनाओं का अपार विस्तार हुआ। जिसका परिणाम बौद्धिक क्रांति के रूप में घटित हुआ। सीखने के दायरे का विस्तार हुआ। हालांकि अब भी और संभवतः आगे भी हमेशा कुछ खास वर्गों को खास किस्म की व्यावसायिक दक्षताओं पर अधिकार रहे जबकि कुछ अन्य के लिए उनके बारे में सोचना भी दूर की कौड़ी बना रहे, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। यह पुरातनपंथ की निशानियां थीं। ज्ञान अब कोई स्थिर ठोस पदार्थ नहीं रह गया था बल्कि वह द्रवित हो चुका था। यह स्वतः ही समाज के सभी वर्गों के बीच प्रवाहित होने लगा था।

यह आसानी से देखा जा सकता है कि यह क्रांति ज्ञान की भौतिकी के रूप में अपने साथ व्यक्ति के व्यवहार में उल्लेखनीय बदलाव लेकर आई। एक बौद्धिक किस्म के उद्दीपन ने हम सभी को प्रभावित किया। मात्र बौद्धिक जीवन, अध्ययन और सीखने में लगे जीवन का महत्त्व बदल गया। अकादमिक और शैक्षिक कार्य अब सम्मानजनक नहीं रह गए बल्कि उन्हें नए सिरे से देखा जाने लगा, वे आलोचना के लिए खुल गए।

लेकिन इस सबके लिए स्कूलों के रवैये में भी वांछित बदलाव की आवश्यकता थी, जिस तरह के बदलावों की हम बात कर रहे हैं, वह अब तक पूरी तरह लाए नहीं जा सके हैं। हमारी स्कूलों के तौर-तरीके और बहुत हद तक शिक्षाक्रम की प्रवृत्तियां भी आज तक उसी युग का अनुकरण करती चली आ रही हैं जब कुछ खास प्रतीकों और निर्देशों का ज्ञान के एकमात्र स्रोत के रूप में विशेष महत्त्व था। अध्ययन के बाहरी तौर-तरीकों में बेशक बहुत बदलाव आया है, लेकिन वर्तमान विचारों पर भी बहुत हद तक उस युग का

नियंत्रण कायम है। हम बहुत बार प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में शारीरिक श्रम, कला और विज्ञान से जुड़े कार्यों को जोड़ने की आलोचना सुनते हैं जिसका आधार यह होता है कि यह कार्य हमारी उदार संस्कृति के विकास की वर्तमान योजना से विमुख कर बच्चों को विशेषज्ञता की ओर ले जाएगी। यदि यह बात त्रासद ढंग से प्रभावित करने की क्षमता न रख रही होती तो नितान्त हास्यास्पद होती। लेकिन यह हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ही है जो पूर्णतः विशेषज्ञता आधारित, एकतरफा और संकीर्ण है। यह ऐसी शिक्षा है जिस पर सीखने के संबंध में पूर्णतः मध्ययुगीन अवधारणाओं का वर्चस्व है। इसमें कुछ ऐसा है जो ज्यादातर हमारी प्रकृति के बौद्धिक पहलुओं जैसे हमारी सीखने की आंकाक्षा, सूचनाएं एकत्रित करने और सीखने के संकेतों पर नियंत्रण पाने को प्रभावित करता है; उपयोग या कला किसी भी उद्देश्य से कुछ बनाने, रचने या उत्पादन करने की हमारी सहज वृत्तियों को नहीं। सच तो यह है कि हस्त कार्यों का प्रशिक्षण, कला और विज्ञान इतने तकनीक केंद्रित और विशेषज्ञता की ओर ले जाने वाले कार्य हैं कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को नियंत्रित करने वाले शिक्षा के विशेषज्ञता केंद्रित लक्ष्यों को अर्जित करने के लिहाज से भी इन्हें आजमाया जा सकता है। असल में यदि शिक्षा को नितान्त बौद्धिक या एक खास तरह से सीखने के उपक्रम के रूप में नहीं देखा गया होता तो संभवतः इन तमाम विधियों और सामग्रियों को ज्यादा विनम्रता और उत्साह के साथ स्वीकार किया गया होता।

जब तक उदार शिक्षा के नाम पर खास पेशों के प्रशिक्षण को खास तरह की संस्कृतियों से जोड़कर देखा जाता रहेगा, जैसे कि मिस्त्री, संगीतकार, वकील, डॉक्टर, किसान आदि को पूर्णतः तकनीकी पेशे माना जाता रहेगा, नतीजे भी वही होंगे जो हम अपने आस-पास सब तरफ देखते हैं, 'सभ्य लोग' और 'मजदूरों' के बीच विभाजन यानी सिद्धांत और कार्य के बीच विभेद। पूरी स्कूली आबादी में से मुश्किल से 1 प्रतिशत बच्चे तथाकथित उच्च शिक्षा ग्रहण करते हैं और मात्र 5 प्रतिशत हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करते हैं जबकि आधे से ज्यादा बच्चे प्राथमिक स्तर तक शिक्षा पूरी करने से भी पहले स्कूल छोड़ देते हैं। सीधे-सीधे समझा जा सकता है कि मनुष्यों में से अधिसंख्य की रुचि निरी बौद्धिकता में नहीं होती है। उनकी प्रवृत्ति या रुचि व्यावहारिक कार्यों की ओर ही अधिक होती है। बहुत सारे ऐसे लोग, जिनमें स्वाभाविक रूप से बौद्धिकता की ओर प्रवृत्ति होती है, उन्हें सामाजिक स्थितियां उस तरह के अनुभव प्राप्त करने से वंचित रखती हैं। अब तक यह देखने में आया है कि बड़ी संख्या में बच्चे प्रारंभिक शिक्षा अर्जित करने, यानी आजीविका हासिल करने में मददगार पढ़ने, लिखने और गिनने से संबंधित संकेत सीख लेने के साथ ही स्कूल छोड़ देते हैं। जहां हमारे शिक्षाविद या नेता शिक्षा का अंतिम लक्ष्य संस्कारों और व्यक्तित्व के विकास आदि के रूप में करते हैं वहीं स्कूली व्यवस्था के तहत परीक्षाएं

उत्तीर्ण करने वाले अधिसंख्यकों के लिए यह महज एक ऐसा उपकरण है जो उन्हें एक सीमित जीवनयापन के लिए जरूरी दो जून रोटी कमाने में मदद करता है। यदि हम अपने शैक्षिक लक्ष्यों को ज्यादा लोगों को सम्मिलित करने के नजरिए को ध्यान में रख निर्धारित करें, यदि हम अपनी शैक्षिक प्रक्रियाओं में उन गतिविधियों को भी शामिल करें जिनकी ज्यादा दिलचस्पी कुछ करने या बनाने में रहती है तो हम पाएंगे कि स्कूल अपने सदस्यों पर ज्यादा सार्थक नियंत्रण हासिल कर पाएंगे, ज्यादा लंबे समय तक वे उन्हें रोक पाएंगे और उन्हें ज्यादा सुसंस्कृत बनने में मदद कर पाएंगे।

लेकिन मैं यह सब क्यों कह रहा हूं? निश्चय ही हमारा सामाजिक जीवन व्यापक और आमूल परिवर्तनों से होकर गुजरा है। यदि हमारी शिक्षा को जीवन के लिए सार्थक होना है तो इसे भी समान रूप से परिवर्तनों के दौर से गुजरना होगा। यह परिवर्तन अचानक एक दिन में कुछ सजग प्रयासों के द्वारा नहीं लाए जा सकते। बल्कि यह परिवर्तन से पहले से ही जारी हैं। समय-समय पर स्कूली व्यवस्था में किए जाने वाले यह परिवर्तन (यहां तक कि उनके प्रति बहुत सरोकार रखने वालों को भी) अक्सर महज कुछ बदलाव, स्कूली तंत्र में मामूली हेर-फेर नजर आते हैं जबकि वास्तव में विकास के संकेत और प्रमाण होते हैं। सक्रिय पेशों, प्रकृति के अध्ययन, प्रारंभिक विज्ञान, कला और इतिहास जैसे विषयों को लागू करना; महज संकेतों का बहिष्कार या उनके महत्त्व को कमतर करना; बच्चों और शिक्षकों के पारस्परिक संबंधों और अनुशासन को लेकर स्कूल के नैतिक वातावरण में बदलाव; ज्यादा सक्रिय, मुखर और स्वनिर्देशन से संबंधित घटकों को शामिल किया जाना - यह सब अनायास नहीं हुआ है बल्कि व्यापक सामाजिक विकास के संदर्भ में यह परिवर्तन किए जाने अनिवार्य होते जा रहे थे। इन सभी घटकों को व्यवस्थित करना, उन्हें उनकी समग्रता में सराहना, और इन विचारों और आदर्शों को पूर्णतः विकसित होने का अवसर देना ताकि वे हमारी स्कूली व्यवस्था के साथ मजबूती से जुड़े रहें, यह काम अभी किया जाना शेष है। यह करने के लिए हमें हमारे प्रत्येक स्कूल को एक विकासशील समुदाय बनाना होगा, जिसमें तमाम तरह के काम होते हों जो व्यापक सामाजिक जीवन को प्रतिबिंबित करते हों और विज्ञान, इतिहास और कलात्मक दृष्टि उसे व्यापकता प्रदान करती हो। जब स्कूल समाज में प्रत्येक बच्चे को ऐसे समुदाय के सदस्य के रूप में प्रशिक्षित करता हो, वे उसे सेवा की भावना से ओतप्रोत, उसे स्व-निर्देश के प्रभावी उपकरणों से सुसज्जित करते हैं तब हम इस बात के प्रति आश्वस्त हो सकते हैं कि हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर पाएंगे जो प्यार और सद्भाव से पूर्ण होगा। ♦

अनुवाद : देवयानी